इस्लाम और अज्ञान

सय्यद अबुल आला मौदूदी

अनुवादक

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

Islam Aur Agyaan (हिन्दी)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट प्रकाशन न० –58

किताब का नाम : इस्लाम और जाहिलियत (उर्दू)
लेखक : मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी

प्रकाशकः मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स
D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली–110025
दूरभाष : 26981652, 26984347
E-mail : info@mmipublishers.net
Website : www.mmipublishers.net

पृष्ठ : 36
ग्यारहवें संस्करण तक प्रकाशित संख्या : 13,500
बारहवां संस्करण : जनवरी 2020 ई०
संख्या : 1100
मूल्य : **₹20.00**

"बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम"

'अल्लाह-दयावान कृपाशील के नाम से'

'इस्लाम और अज्ञान'

दुनिया में जितनी चीज़ों से इन्सान को वास्ता पड़ता है, उनमें से वह किसी के साथ भी उस वक्त तक कोई मामला नहीं कर सकता जब तक कि वह उस चीज़ की असलियत और हकीकत और अपने तथा उसके आपसी सम्बन्ध के बारे में कोई राय निश्चित न कर ले। यह अलग बात है कि उसकी राय सही भी हो सकती है और ग़लत भी, हर हाल में उसे इन चीज़ों के बारे में कोई न कोई राय निश्चित करनी पड़ती है। और जब तक वह कोई राय निश्चित नहीं कर लेता यह फ़ैसला नहीं कर सकता कि मैं उसके साथ किस प्रकार की नीति अपनाऊं। यह आपका रात दिन का तजुर्बा है। आप जब किसी आदमी से मिलते हैं तो आपको यह जानने की ज़रूरत होती है कि यह आदमी कौन है, किस हैसियत, किस दर्जे, किन खूबियों का आदमी है। मुझसे इसका सम्बन्ध किस तरह का है। इसके बिना आप यह तय कर ही नहीं सकते कि आपको उसके साथ क्या मामला करना है। अगर जानकारी हासिल नहीं होती तो अनुमान और अन्दाज़े से ही एक राय इन चीज़ों के बारे में निश्चित करनी पड़ती है। और उसके साथ जो रवैया भी आप अपनाते हैं उसी राय की बुनियाद पर अपनाते हैं। जो चीजें आप खाते हैं उनके साथ आपका यह मामला इसी वजह से है कि आपकी जानकारी या अंदाज़े के मुताबिक़ वे चीज़ें आप की खुराकी जरूरत को पूरा करती हैं। जिन चीज़ों को आप फेंक देते हैं, जिनको आप इस्तेमाल करते हैं, जिनकी आप हिफाज़त और देखभाल करते हैं, जिनका आप आदर या अनादर करते हैं, जिन से आप डरते या प्रेम करते हैं, उन सबके

बारे में यह अलग-अलग सुलूक भी उसी राय और मत की वजह से होते हैं जो आपने उन चीज़ों के गुण और अपने साथ उनके सम्बन्ध के बारे में निश्चित किया है।

जो राय आप चीज़ों के बारे में क़ायम किया करते हैं, उसके सही होने पर आपके रवैये का सही होना और ग़लत होने पर आप के रवैये का ग़लत होना निर्भर करता है। और उस राय का ग़लत या सही होना इसी चीज़ पर निर्भर करता है कि क्या आप ने राय इल्म और ज्ञान की बुनियाद पर क़ायम की है या अनुमान और अंदाज़े से या कि किसी चीज़ को सिर्फ़ देख कर। जैसे एक बच्चा आग को देखता है और केवल आंखों से देखकर यह राय क़ायम करता है कि यह एक बहुत ही सुन्दर खिलौना है, अतः इस राय के नतीजे में उसका व्यवहार यह होता है कि वह उसे उठाने के लिए हाथ बढ़ा देता है। एक दूसरा आदमी उसी आग को देखकर भ्रम या अनुमान और अंदाज़े की बुनियाद पर यह राय क़ायम करता है कि उसके अन्दर ईश्वरीय गुण है या यह ईश्वर का रूप है। अतः इस राय की बुनियाद पर वह फ़ैसला करता है कि इसके साथ मेरा व्यवहार यह होना चाहिए कि मैं इसके सामने श्रृद्धा-पूर्वक अपना सिर झुका दूं। एक तीसरा आदमी इसी आग को देखकर इसकी असलियत और खूबियों की खोज करता है। और ज्ञान और खोज की बिना पर यह राय क़ायम करता है कि यह पकाने-जलाने और तपाने वाली एक चीज़ है। और मेरे साथ इसका सम्बन्ध वही है जो एक मालिक के साथ सेवक का होता है। इसलिए इस राय की बुनियाद पर वह न आग को खिलौना बनाता है और न माबूद और पूज्य, बल्कि इससे ज़रूरत के मुताबिक़ पकाने, जलाने और तपाने का काम लेता है।

इन विभिन्न प्रकार के व्यवहारों और रवैयों में से बच्चे और आग पूजने वाले का व्यवहार अज्ञान पूर्ण है, क्योंकि बच्चे की यह

राय कि आग सिर्फ़ खिलौना है तजुर्बे से ग़लत साबित हो जाती है। और आग की पूजा करने वाले की यह राय कि आग स्वयं ईश्वर है या ईश्वर का रूप और प्रतीक है, किसी प्रमाण के आधार पर नहीं है, बल्कि केवल भ्रम अथवा अनुमान पर आश्रित है। इसके विपरीत आग से काम लेने वाले का रवैया सच्चे ज्ञान और इल्म पर आधारित है। क्योंकि आग के बारे में उसने जो मत निश्चित किया है, इसका सम्बन्ध ज्ञान से है।

जीवन की मूल समस्याएं

इस भूमिका को समझ लेने के बाद अब आप आम बातों से हटकर बुनियादी चीज़ों पर विचार कीजिए। इन्सान इस संसार में अपने आपको मौजूद पाता है। उसका एक शरीर है, जिसमें अनेक शक्तियां और ताक़तें हैं। उसके सामने ज़मीन और आसमान का एक अत्यन्त विशाल संसार है, जिसमें लातादाद और असीम चीज़ें हैं और वह अपने अन्दर उन चीज़ों से काम लेने की ताक़त भी पाता है। उसके चारों ओर अनेक मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और पहाड़-पत्थर हैं। और इन सब से उसकी ज़िन्दगी जुड़ी हुई है। अब क्या आपकी समझ में यह बात आती है कि यह उनके साथ कोई व्यवहार संबंध स्थापित कर सकता है, जब तक कि पहले स्वयं अपने विषय में उन तमाम चीज़ों के बारे में और उनके साथ अपने संबंध के बारे में कोई राय क़ायम न कर ले।

क्या वह अपनी ज़िन्दगी के लिए कोई रास्ता अपना सकता है, जब तक यह तय न कर ले कि मैं कौन हूं? क्या हूं, ज़िम्मेदार हूं या ज़िम्मेदार नहीं हूं? आज़ाद हूं या गुलाम, गुलाम हूं तो किसका? जवाबदेह हूं तो किसके सामने? मेरी इस दुनियावी ज़िदगी का कोई नतीजा है या नहीं? है तो क्या है? इसी तरह क्या वह अपनी शक्तियों का कोई उपयोग निश्चित कर सकता है, जब तक इस

सवाल का जवाब न देदे कि यह शरीर और वे शक्तियां उसकी अपनी निजी हैं या किसी की प्रदान की हुई हैं? इन सबका हिसाब-किताब लेने वाला कोई है या नहीं? इन सबके इस्तेमाल के नियम उसे खुद तय करने हैं या किसी और को? इसी तरह क्या वह अपने चारों ओर की चीज़ों के बारे में कोई नीति अपना सकता है, जब तक वह यह फ़ैसला न कर ले कि उन चीज़ों का मालिक वह खुद है या कोई और। उन पर उसके अधिकार सीमित हैं या असीम? सीमित हैं तो सीमा निश्चित करने वाला कौन है? इसी तरह क्या वह आपस में अपने इन्सानी भाइयों के साथ व्यवहार की कोई सूरत तय कर सकता है। जब तक इस मामले में कोई राय कायम न कर लें कि इन्सानियत और मानवता कहते किसे हैं? इन्सान और इन्सान के बीच अन्तर का आधार क्या है और दोस्ती, दुश्मनी, सहमति, मतभेद, सहयोग और असहयोग का आधार किन चीज़ों पर है? इसी तरह क्या वह सामूहिक रूप में इस संसार के प्रति कोई नीति निश्चित कर सकता है, जब तक इस मामले में किसी नतीजे पर न पहुंचे कि जगत की यह व्यवस्था किस प्रकार की है और इसमें मेरी हैसियत क्या है।

उपरोक्त भूमिका के आधार पर बेझिझक यह कहा जा सकता है कि इन तमाम मामलों के बारे में एक न एक राय कायम किये बिना कोई नीति या रवैया अपनाना नामुम्किन है। वास्तव में हर इन्सान की जो संसार में जीवन बसर कर रहा है,इन सवालों के बारे में चेतन या अचेतन रूप में जाने या अनजाने कोई राय ज़रूर है और वह कोई न कोई राय रखने पर मजबूर है, क्योंकि वह इसके बिना कोई क़दम नहीं उठा सकता। यह ज़रूरी नहीं कि हर आदमी ने इन सवालों पर दार्शनिक रूप से सोच-विचार किया हो और फिर एक-एक सवाल के बारे में स्पष्ट रूप से जांच-परख कर फ़ैसला

किया हो। बहुत से लोगों के मन में इन सवालों की कोई निश्चित सूरत होती ही नहीं, न वे इन पर जान-बूझ कर कुछ सोचते हैं,लेकिन फिर भी हर इन्सान संक्षिप्त रूप से इन सवालों के बारे में किसी न किसी पहलू से एक फ़ैसले पर अवश्य पहुंच जाता है और जीवन में उसका रवैया जो भी होता है,लाज़मी तौर पर इसी राय़ और धारणा के अनुसार होता है।

यह बात जिस प्रकार लोगों के बारे में सही है, उसी तरह से जमाअतों और गिरोहों के बारे में भी सही है। यह सवाल इन्सानी जीवन के बुनियादी सवाल हैं, इसलिए किसी सांस्कृतिक और सभ्यता सम्बन्धी व्यवस्था या सामाजिक ढांचे के लिए कोई कार्य प्रणाली बन ही नहीं सकती,जब तक कि इन सवालों का कोई जवाब निश्चित न कर लिया जाए। इनका जवाब जो भी निश्चित किया जाएगा, उसी के अनुसार नैतिकता का एक दृष्टिकोण स्थापित होगा और उसी के अनुसार जीवन के विभिन्न भागों का निर्माण होगा। तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण सभ्यता उसी रंग को अपना लेगी जो उस जवाब को अपेक्षित होगा। वास्तव में इस मामले में इससे भिन्न सूरत सम्भव ही नहीं है, चाहे एक व्यक्ति का रवैया हो या एक समाज का, हर हाल में वह उसी अंदाज़ को अपनाएगा जो इन सवालों के जवाब का होगा। यहां तक कि यदि आप चाहें तो एक व्यक्ति या एक समाज की नीति का जायज़ा लेकर सरलता पूर्वक यह जान सकते हैं कि उस नीति की बुनियाद में जीवन के इन बुनियादी सवालों का कौन सा जवाब काम कर रहा है, क्योंकि यह बिल्कुल नामुम्किन है कि किसी व्यक्ति या समाज की नीति का अन्दाज़ इन सवालों के जवाब से प्रभावित न हो। ज़ुबानी दावे और वास्तविक नीति में अन्तर अवश्य सम्भव है,परन्तु इन प्रश्नों को जो उत्तर वास्तव में मन के अन्दर समाया हुआ है, उसके और व्यावहारिक

नीति के आकार-प्रकार में हरगिज़ कोई अन्तर नहीं हो सकता।

अच्छा अब हमें एक क़दम और आगे बढ़ाना चाहिए। जीवन की ये मूल समस्याएं, जिनके बारे में अभी आप ने सुना कि इनका कोई हल अपने मन में निश्चित किये बिना इन्सान संसार में एक क़दम भी नहीं चल सकता, अपनी वास्तविकता की दृष्टि से ये सब बातें परोक्ष से संबंध रखती हैं, इनका कोई जवाब आसमान पर लिखा हुआ नहीं है कि हर आदमी संसार में आते ही उसे पढ़ ले। इनका कोई जवाब ऐसा खुला हुआ भी नहीं है कि खुद ब खुद हर इन्सान को मालूम हो जाए। इसीलिए इनका कोई ऐसा हल भी नहीं है जिस पर तमाम लोग सहमत हों, बल्कि इनके बारे में हमेशा इन्सानों के बीच मतभेद रहा है और हमेशा अलग-अलग लोग अलग-अलग तरीक़ों से इन को हल करते रहे हैं। अब सवाल यह है कि इनके हल के क्या-क्या तरीक़े सम्भव हैं, किन-किन तरीक़ों को संसार में अपनाया गया है और इन अलग-अलग तरीक़ों से जो हल निकलते हैं, वे किस प्रकार के हैं?

इनके हल का एक तरीक़ा यह है कि इन्सान अपनी इन्द्रियों पर भरोसा करे और उनसे जैसा कुछ महसूस होता है, उसी के आधार पर इन चीज़ों के बारे में एक राय निश्चित कर ले।

दूसरा तरीक़ा यह है कि इन्द्रियों द्वारा निरीक्षण के साथ कल्पना और अनुमान को मिलाकर एक नतीजा निकाला जाये।

तीसरा तरीक़ा यह है कि पैग़म्बरों ने यह दावा करते हुये कि उन्हें सत्य का साक्षात ज्ञान है इन समस्याओं का जो हल पेश किया है, उसे मान लिया जाये।

संसार में अब तक इन समस्याओं के हल के लिए इन्हीं तीन सूरतों को इख़्तियार किया गया है और शायद यह तीन सूरतें सम्भव

भी हैं। इनमें से हर सूरत अपने अलग तरीके से इन समस्याओं को हल करती हैं, प्रत्येक हल से एक विशेष प्रकार की प्रणाली जन्म लेती है और एक ख़ास संस्कृति का आविर्भाव होता है, जो अपनी बुनियादी विशेषताओं में दूसरे तमाम हलों से जन्म लेने वाली प्रणालियों से भिन्न होती हैं। अब हम दिखाना चाहते हैं कि इन विभिन्न तरीकों से इन समस्याओं के क्या हल निकलते हैं और हर एक हल किस प्रकार की प्रणाली पैदा करता है।

पूर्ण अज्ञान

ज्ञानेन्द्रियों पर भरोसा करके जब इन्सान इन समस्याओं के बारे में कोई राय कायम करता है तो स्वभावतः चिंतन के इस तरीके से वह इस नतीजे पर पहुंचता है कि सृष्टि की यह समस्त व्यवस्था मात्र संयोग वश वजूद में आ गयी है, जिसके पीछे कोई मकसद या हिकमत नहीं है। यह कारखाना यों ही बन गया है, यों ही चल रहा है, यों ही बे नतीजा ख़त्म हो जाएगा। इसका कोई मालिक नज़र नहीं आता, इसलिए वह या तो है ही नहीं या यदि है तो इन्सानी ज़िन्दगी से उसका कोई संबंध नहीं है। इन्सान एक तरह का जानवर है, जो शायद संयोगवश यहां पैदा हो गया है, कुछ पता नहीं कि इसको किसी ने पैदा किया, या ख़ुद पैदा हो गया है। बहरहाल यह हमारे लिए विचारणीय बात नहीं। हम केवल इतना जानते हैं कि यह इस धरती पर पाया जाता है, इसकी कुछ इच्छाएं हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए इसकी तबियत अन्दर से ज़ोर मारती है, इसके पास कुछ शक्तियां और कुछ यंत्र हैं जो उन इच्छाओं की पूर्ति का साधन बन सकते हैं और इसके चारों ओर धरती पर असंख्य और असीम मात्रा में सामान फैला हुआ है, जिस पर अपनी शक्तियों और यंत्रों का प्रयोग करके वह अपनी इच्छाएं पूरी कर सकता है! अतः उसकी शक्तियों

का उपयोग इसके सिवा कुछ नहीं कि वह अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को अधिक से अधिक कुशलता के साथ पूरा करे और संसार की कोई हैसियत इसके अलावा नहीं कि वह मज़ेदार खानों का एक थाल है जो उसके सामने है,ताकि इन्सान उस पर ख़ूब हाथ मारे,उसके ऊपर कोई ऐसा हाकिम नहीं जिसके सामने इन्सान को जवाब देना हो और न ज्ञान और मार्ग दर्शन का ऐसा स्रोत मौजूद है,जहां से इन्सान को अपने जीवन के लिए क़ानून मिल सकता हो। अतः इन्सान बिल्कुल आज़ाद और ग़ैर ज़िम्मेदार है। अपने लिए क़ानून बनाना अपनी शक्तियों के इस्तेमाल,तजवीज़ और मौजूद चीज़ों के साथ उसका व्यवहार क्या हो यह निश्चित करना,इसका अपना काम है। उसके लिए यदि कोई रहनुमाई है तो पुश पक्षियों के जीवन में, पत्थरों की कहानियों में, या अपने इतिहास के अनुभवों में है और यदि वह जवाबदेह है तो खुद अपने सामने या उस हुकूमत के सामने जो खुद इन्सानों के अन्दर से ही उभर कर इन्सानों पर छा जाये। जीवन जो क़ुछ है यही सांसारिक जीवन है और कर्मों के सारे नतीज़े इसी जीवन की सीमा तक हैं, अतः सही और ग़लत, लाभदायक और हानिकारक और किसी चीज़ को अपनाने और छोड़ने का फ़ैसला केवल उन्हीं नतीजों को देखते हुये किया जायेगा जो इस संसार में सामने आते हैं।

यह जीवन संबंधी एक पूर्ण दृष्टि कोण है, जिसमें जीवन के तमाम बुनियादी सवालों का जवाब एन्द्रिक निरीक्षण के आधार पर दिया गया है और इस जवाब का हर हिस्सा दूसरे हिस्से के साथ कम से कम एक तर्क युक्त संबंध और एक स्वाभाविक अनुकूलता अवश्य रखता है, जिसके कारण इन्सान दुनिया में एक समता युक्त और विषमता से मुक्त नीति अपना सकता है,यह एक अलग बात है कि यह जवाब और इसके अन्तर्गत अपनाई जाने वाली नीति अपनी

जगह सही है या ग़लत। अब इस नीति पर नज़र डालिए, जिसको इन्सान उपर्युक्त जवाब के आधार पर अपने जीवन में अपनाता है।

व्यक्तिगत जीवन में इस दृष्टिकोण का लाज़मी नतीजा यह है कि इन्सान शुरू से लेकर आख़िर तक स्वतंत्र रूप से ग़ैर ज़िम्मेदारी का रवय्या अपनाए। वह अपने आप को अपने शरीर और अपनी शारीरिक शक्तियों का मालिक समझेगा। इसलिए अपनी इच्छा के अनुसार जिस प्रकार चाहेगा, उनका इस्तेमाल करेगा। दुनिया की जो चीज़ें उसके हाथ आयेंगी, और जिन लोगों पर उसे प्रभुत्व प्राप्त होगा, उन सब के साथ वह इस प्रकार मामला करेगा, मानो वह उनका स्वामी है। इसके अधिकारों को सीमित करने वाली चीज़ केवल प्राकृतिक नियमों की सीमायें और सोसाइटी के अनिवार्य बन्धन होंगे। खुद उसके अपने मन में कोई ऐसी नैतिक भावना, ज़िम्मेदारी का एहसास और किसी पूछ-ताछ का भय न होगा, जो उसे 'बिना नाथ का बैल' होने से रोकता हो। जहां बाहरी रुकावटें न हों या जहां वह इन रुकावटों के बावजूद काम कर सकता हो, वहां तो स्वभावतः उसकी धारणा को यही अपेक्षित होगा कि वह अत्याचारी, विश्वासघाती, शरारत पसन्द और उपद्रवी हो। वह स्वभावतः स्वार्थी, भौतिकवादी और अवसरवादी होगा। अपनी वासनाओं और अपनी दैहिक आवश्यकताओं की सेवा के सिवा उसका कोई और जीवन लक्ष्य न होगा और वह केवल उन चीज़ों को महत्व देगा जो उसके अपने जीवन लक्ष्य की दृष्टि से कोई क़ीमत रखती हो। लोगों में इस चरित्र और व्यवहार का पैदा होना इस धारणा का स्वभाविक परिणाम है। बेशक यह हो सकता है कि किसी मसलिहत और दूरदर्शिता के कारण ऐसा आदमी हमदर्द हो, त्यागी हो और अपनी क़ौम की उन्नति और भलाई के लिए जान तोड़ कोशिश करता हो, और ऐसा लगता हो कि वह अपने

आचार-व्यवहार के लिहाज़ से एक ज़िम्मेदार व्यक्ति है,लेकिन जब आप उसके चरित्र का विश्लेषण करेंगे तो पता चलेगा कि वास्तव में यह उसकी स्वार्थपरता और मांसिकता ही का विस्तार है। वह अपने देश या क़ौम की भलाई में अपनी भलाई देखता है, इसलिए उसकी भलाई चाहता है। यही वजह है कि ऐसा आदमी ज़्यादा से ज़्यादा एक राष्ट्रवादी और नेशनलिस्ट ही हो सकता है।

फिर जो समाज इस मनोवृत्ति के लोगों से बनेगा, उसकी प्रमुख विशेषतायें ये होंगी:—

१. राजनीति की बुनियाद मानव प्रभुत्व पर रखी जाएगी, भले ही वह एक व्यक्ति, वंश या एक वर्ग का प्रभुत्व हो या आम जनता का। अधिक से अधिक जो उच्चतम कल्पना की जा सकेगी, वह राष्ट्रमण्डल की कल्पना होगी। इस राज्य में क़ानून बनाने वाले इन्सान होंगे। सारे क़ानून और नियम इच्छा और अनुभव पूर्ण हितों के आधार पर बनाये और बदले जायेंगे और नीतियां भी इसी बात को सामने रख कर बनायी और बदली जायेंगी कि हमारा फ़ायदा किस में है और हित किस में है। राज्य की सीमा में वे लोग बलपूर्वक उभर आयेंगे, जो सबसे अधिक शक्तिशाली, चालाक, कपटी, झूठे, धोखेबाज़, सख़्तदिल और गन्दी मनोवृत्ति के होंगे। समाज का मार्ग-दर्शन और शासन का कार्य-प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में होगा और उनके संविधान में शक्ति का नाम 'सत्य' और अशक्ति का नाम 'असत्य' होगा।

२. सभ्यता और समाज की सारी व्यवस्था इच्छा पूर्ति पर आधारित होगी। इच्छा पूर्ति की मांग हर नैतिक बंधन से मुक्त होती चली जाएगी और समस्त नैतिक मानदन्डों की स्थापना इस तरह से होगी कि उनके कारण लज़्ज़त हासिल करने में बाधा कम से कम हो।

३. कला और साहित्य भी इसी मनोवृत्ति से प्रभावित होंगे। और उनमें नग्नता और वासना के तत्वों की वृद्धि होती चली जाएगी।

४. आर्थिक जीवन में कभी जागीरदारी का बोल-बाला होगा, कभी पूंजीवादी व्यवस्था उसका स्थान लेगी और कभी मज़दूर आन्दोलन व उपद्रव करके अपनी डिक्टेटरशिप कायम कर लेंगे। आर्थिक व्यवस्था का संबंध न्याय के साथ कभी स्थापित न हो सकेगा, क्योंकि दुनिया और उसकी दौलत के बारे में इस समाज के प्रत्येक व्यक्ति की बुनियादी नीति इस नीति पर आधारित होगी कि यह बेहतरीन खानों से भरी थाली है, जिस पर अपनी इच्छा के अनुसार और अवसर के अनुसार हाथ साफ करने के लिए वह आज़ाद है।

५. फिर इस समाज में लोगों को तैयार करने के लिए शिक्षा-दीक्षा की जो व्यवस्था होगी, उसका स्वभाव भी इसी जीवन-दर्शन और इसी नीति के अनुरूप होगा। इसमें नयी आने वाली हर पीढ़ी को संसार और मनुष्य तथा संसार में मनुष्य की हैसियत के बारे में उसी धारणा की सीख दी जाएगी जिसकी व्याख्या हमने ऊपर की है। सारी जानकारियां चाहे वह ज्ञान-विज्ञान के किसी भी विभाग से संबंध रखती हों, उनके सामने ऐसे ही क्रम के साथ पेश की जायेंगी कि खुद ब खुद उनके मन में जीवन संबंधी यह भौतिकवादी धारणा पैदा हो जाए और फिर उनका परिशोषण इस प्रकार होगा कि वे जीवन में यही रीति अपनाने और इसी ढंग के समाज में खप जाने के लिए तैयार हों। इस शिक्षा-दीक्षा की विशेषताओं के बारे में हमें आप से कुछ कहने की ज़रूरत नहीं क्योंकि आप लोगों को इसका व्यक्तिगत अनुभव है। जिन विद्यालयों

में आप शिक्षा पा रहे हैं उन सब की स्थापना इसी दृष्टिकोण के साथ हुयी है, यद्यपि उनके नाम इस्लामिया कालिज, मुस्लिम युनिवर्सिटी आदि हैं।

यह नीति जिसकी व्याख्या हमने अभी आप के सामने की है, पूर्णतया अज्ञानपूर्ण है। यह उसी तरह का रवय्या है जो उस बच्चे का होता है जो केवल अपनी आंख पर भरोसा करके आग को एक सुन्दर खिलौना समझता है। अन्तर केवल यह है कि वहां फौरन ही इसकी ग़लती अनुभव से ज़ाहिर हो जाती है, क्योंकि जिस आग को खिलौना समझकर वह उसकी तरफ हाथ बढ़ाता है, वह गर्म आग होती है, हाथ लगाते ही बता देती है कि मैं खिलौना नहीं हूं। इसके विपरीत यहां भ्रम का ग़लत होना बहुत देर में खुलता है। बल्कि बहुत लोगों पर खुलता ही नहीं। क्योंकि ये जिस आग पर हाथ डालते हैं, उसकी आंच धीमी है, वह तुरन्त चरका नहीं देती, बल्कि सैकड़ों साल तक तपाती रहती है, फिर भी यदि कोई आदमी अनुभवों से शिक्षा लेने के लिए तैयार हो तो रात-दिन के जीवन में इस दृष्टिकोण के कारण लोगों की बेईमानियों, शासकों के अत्याचारों, न्यायाधीशों के अन्यायों और मालदारों की स्वार्थपरताओं और आम लोगों के दुराचारों का जो कटु अनुभव उसको होता है और बड़े पैमाने पर इसी दृष्टिकोण के कारण राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद, युद्ध, दंगे, देशों पर अनुचित आधिपत्य जमाने और कौमों को नष्ट करने की जो लपटें निकलती हैं,उनकी चरकों से वह इस नतीजे पर पहुंच सकता है कि यह नीति अज्ञान की नीति है, ज्ञान की नहीं। क्योंकि इन्सान ने अपने और जगत की व्यवस्था के बारे में जो राय कायम करके यह नीति अपनाई है,वह सत्य के अनुरूप नहीं है, वरना उससे ये बुरे नतीजे नहीं निकलते।

अब हमें दूसरे तरीके को देखना चाहिए। जीवन की मूलभूत समस्याओं के हल का दूसरा तरीका यह है कि निरीक्षण के साथ अनुमान इत्यादि से काम लेकर इन समस्याओं के बारे में कोई राय कायम की जाए। इस तरीके से तीन अलग-अलग राय कायम की गयी हैं और हर राय से एक विशेष प्रकार की नीति या व्यवहार पद्धति का जन्म हुआ है।

अनेकेश्वरवाद (शिर्क)

एक विचार यह है कि सृष्टि की यह व्यवस्था बग़ैर ईश्वर के तो नहीं है, परन्तु इसका एक मालिक और प्रभु नहीं है, बल्कि अनेक मालिक और प्रभु हैं। सृष्टि की विभन्न शक्तियों का सूत्र विभिन्न ख़ुदाओं के हाथ में है और इन्सान का सौभाग्य या दुर्भाग्य, सफलता और असफलता, लाभ-हानि, अनेक सत्ताओं की कृपा और प्रकोप पर निर्भर करती है। यह राय जिन लोगों ने कायम की है, उन्होंने फिर अपने अनुमान और अटकल से काम लेकर यह तय करने की कोशिश की है कि प्रभुत्व शक्तियां कहां-कहां और किस-किस के अधिकार में हैं और जिन-जिन चीज़ों पर भी उनकी नज़र जाकर ठहरी है, उन्हीं को उन्होंने प्रभु मान लिया है।

इस मत के आधार पर इन्सान जिस नीति को अपनाता है उसकी प्रमुख विशेषताएं ये हैं—

(१) इससे इन्सान का पूरा ज़ीवन अन्धविश्वास पूर्ण बन जाता है। वह किसी ज्ञानात्मक प्रमाण के बिना केवल अपने विचार और अनुमान से अनेक चीज़ों के बारे में यह राय कायम करता है कि वे अलौकिक तरीकों से उसके भाग्य पर भला या बुरा प्रभाव डालती हैं। इसलिए यह अच्छे प्रभावों की कल्पित आशा और बुरे प्रभावों के काल्पनिक भय में पड़ कर अपनी अनेक शक्तियों को व्यर्थ तरीके से नष्ट कर देता है। कहीं किसी क़ब्र से उम्मीद लगाता है कि यह

मेरा काम बना देगी, कहीं किसी 'मूर्ति' पर भरोसा करता है कि यह मेरा भाग्य बना देगी, कहीं और किसी कल्पित कर्ता-धर्ता को प्रसन्न करने के लिए दौड़ता फिरता है, कहीं किसी बुरे सकुन से हिम्मत हार बैठता है, कहीं किसी शुभ सकुन से आशायें जोड़कर कल्पित भवन खड़े कर लेता है। ये सारी चीज़ें उसके विचारों और कोशिशों को प्राकृतिक उपायों से हटाकर बिल्कुल अप्राकृतिक मार्ग पर डाल देती है।

(२) इस मत और विचार के फलस्वरूप पूजा-पाठ, चढ़ावों और नज़र नियाज़ और दूसरी रस्मों की एक लम्बी चौड़ी सूची बनती है। जिसमें उलझकर इन्सान की कोशिशों और कर्मों का एक बड़ा भाग बेनतीजा कामों में बरबाद हो जाता है।

(३) जो लोग इस अनेकेश्वर वादी अन्धविश्वास में पड़ जाते हैं, उनको मूर्ख बनाकर अपने जाल में फांस लेने का अच्छा अवसर चालाक लोगों को मिल जाता है। कोई राजा बन बैठता है और सूरज-चांद तथा अन्य देवताओं से अपनी वंशावली मिला कर लोगों को विश्वास दिलाता है कि हम भी देवताओं में से हैं और तुम हमारे बंदे और सेवक हो। कोई पुरोहित या 'मुजाविर' बन बैठता है और कहता है कि तुम्हारा लाभ और हानि जिन के हाथों में है, उनसे हमारा संबंध है और तुम हमारे द्वारा ही उन तक पहुंच सकते हो। कोई पंडित और पीर बन जाता है और तावीज़ गण्डों और यन्त्रों, मंत्रों और तन्त्रों का ढोंग रचाकर लोगों को विश्वास दिलाता है कि ये चीज़ें अलौकिक रूप से तुम्हारी ज़रूरत पूरी करेंगी। फिर इन सब चालाक लोगों की पीढ़ियां स्थाई परिवारों और वर्गों का रूप धारण कर लेती हैं, जिनके अधिकार, विशिष्टता और प्रभाव समय के साथ बढ़ते और गहरी बुनियादों पर जमते चले जाते हैं। इस तरह इस धारणा के कारण तमाम इन्सानों की गर्दनों में शाही परिवारों,

धार्मिक पदाधिकारियों और रूहानी पेशावाओं के प्रभुत्व का 'जुआ' पड़ जाता है और ये बनावटी भगवान उसको इस तरह अपना सेवक बनाते हैं कि मानों वे उनके लिए दूध देने वाले और सवारी या बोझ ढोने के जानवर हैं।

(४) यह दृष्टिकोण न तो विज्ञान और कला, दर्शन और साहित्य,सभ्यता तथा राजनीति के लिए कोई स्थायी आधार जुटाता है और न काल्पनिक ईश्वरों से इन्सान को किसी प्रकार मार्गदर्शन ही मिलता है, जिसका वे पालन करें। इन ईश्वरों से तो इन्सान का सम्बन्ध केवल इस हद तक सीमित रहता है कि वह उनकी कृपा और सहायता प्राप्त करने के लिए केवल पूजन सम्बन्धी कुछ रस्में अदा कर दें। रहे जीवन के मामले तो उनके सिलसिले में क़ानून और नियम बनाना और व्यवहार के तरीके तय करना आदमी का अपना काम होता है।।

इस तरह अनेकेश्वरवादी समाज व्यवहारतः उन्हीं सब मार्गों पर चलता है, जिनका उल्लेख पूर्ण-अज्ञानता के सिलसिले में अभी आप से किया जा चुका है। वही चरित्र, वही व्यवहार, वही सभ्यता, वही राजनीति, वही आर्थिक व्यवस्था और वही दर्शन एवं साहित्य। इन सब हैसियतों से अनेकेश्वरवादी व्यवहार और पूर्ण-अज्ञान से युक्त व्यवहार में कोई मौलिक अन्तर नहीं होता।

संसार त्याग या सन्यास

दूसरी धारणा जो निरीक्षण के साथ अनुमान को मिलाकर स्थिर की गयी है, वह यह है कि संसार और यह मानव देह इन्सान के लिए एक यातना-स्थल है। इंसान की आत्मा एक दण्डित अपराधी के रूप में इस जेल में क़ैद की गयी है। इच्छाएं और वासनाएं और वे तमाम ज़रूरतें जो इस संबंध के कारण लोगों को पेश आती हैं, वे वास्तव में इस जेल के तौक़ और बेड़ियां हैं। इसान जितना इस

संसार और संसार की चीज़ों से संबंध बनाये रखेगा, उतना ही इन बन्धनों में फंसता चला जाएगा। और यह चीज़ उसे और अधिक यातना का भागी बना देगी। छुटकारे का रास्ता इसके अलावा कोई नहीं कि जीवन के सारे बखेड़ों से संबंध तोड़ लिया जाए। इच्छाओं का दमन किया जाये, लज़्ज़तों से दूर रहा जाये, शारीरिक आवश्यकताओं और मन की अपेक्षाओं को पूरा न किया जाये। उन सब प्रेमों को, मन से निकाल दिया जाए जो दैहिक संबंधों से पैदा होते हैं और अपने इस दुश्मन अर्थात मन और शरीर को तपस्याओं और साधनाओं से इतने कष्ट दिये जाएं कि आत्मा पर उनकी पकड़ बाकी न रह सके। इस तरह आत्मा हल्की-फुल्की और पवित्र हो जाएगी और मुक्ति के उच्चतम स्थल पर उड़ने की शक्ति प्राप्त कर लेगी।

इस मत को मान लेने के बाद जो नीति निश्चित होती ह उसकी विशेषतायें ये हैं–

(१) इससे मानव की समस्त अभिरुचियां सामाजिकता से निजित्व की ओर, और सभ्यता से असभ्यता की ओर फिर जाती हैं। वह संसार और उसके जीवन से मुंह मोड़कर खड़ा हो जाता है, ज़िम्मेदारियों से भागता है, उसका पूरा जीवन असहयोग और असम्बन्ध का जीवन बन जाता है और उसका चरित्र अधिकतर निषेधात्मक या नकारवादी बन जाता है।

(२) इस मत के कारण सज्जन लोग दुनिया के कारोबार से हट कर अपनी मुक्ति की चिन्ता में एकांत की ओर चले जाते हैं और संसार के सारे झमेलों पर दुर्जनों का अधिकार हो जाता है।

(३) सभ्यता पर इस मत का प्रभाव जिस सीमा तक पड़ता है उस से लोगों में निषेधात्मक चरित्र, असमाजिक और इन्फरादियत पसन्द प्रवृत्तियां और निराशामय विचार उत्पन्न हो जाते हैं। उनकी

कर्म शक्तियां ठण्डी पड़ जाती हैं, वे अत्याचारियों के लिए नर्म चारा बन जाते हैं। और हर अत्याचारी शासन उन्हें आसानी से अपने क़ाबू में कर सकता है। दरअसल इस दृष्टिकोण में लोगों को अत्याचारियों का अधीन बनाने के लिए जादू का प्रभाव है।

(४) मानव प्रकृति के साथ इस सन्यासवाद का बराबर युद्ध रहता है और यह प्रायः उस प्रकृति से पराजित हो जाता है। जब यह पराजित होता है तो अपनी दुर्बलताओं को छुपाने के लिए इसे बहानों की शरण लेनी पड़ती है। इसीलिए कहीं प्रायश्चित की धारणा आविष्कृत होती है, कहीं ईश-प्रेम के लिए मांसल सौंदर्य की चाह को एक लाक्षणिक प्रेम कहा जाता है और वास्तव में यह एक ढोंग होता है और कहीं संसार त्याग की आड़ में ऐसी दुनियादारी की रीति निभाई जाती है, जिसके सामने दुनियादार भी शरमा जायें।

अद्वैतवाद

तीसरा मत जो निरीक्षण और अनुमान के सहारे निर्धारित किया गया है, यह है कि इन्सान और जगत की तमाम चीज़ें मात्र माया हैं, इनका कोई स्थाई अस्तित्व नहीं है। वास्तव में एक अस्तित्व में इन तमाम चीज़ों को स्वयं अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है और वही इन सब में क्रियाशील है। विस्तार में जाकर इस धारणा के असंख्य रूप हो गये हैं परन्तु सभी में समान रूप से यही विचार पाया जाता है कि यह तमाम पदार्थ एक ही अस्तित्व का बाहय प्रदर्शन हैं और वास्तव में मौजूद वही है, बाक़ी कुछ नहीं।

इस दृष्टिकोण के आधार पर इन्सान जो नीति अपनाता है,वह यह है कि इसे खुद अपने ही वजूद में संदेह हो जाता है, यह तो दूर की बात है कि वह कोई काम करे। वह अपने आप को एक कठपुतली समझता है, जिसे कोई और नचा रहा है या जिसमें कोई और नाच रहा है। वह अपनी कल्पनाओं के नशे में खो जाता है, उसके लिए न

कोई जीवन का लक्ष्य होता है और न कोई व्यवहार नीति। वह सोचता है, मैं खुद तो कुछ हूं ही नहीं, न मेरे करने का कोई कार्य है, न मेरे किए से कुछ होता है, वास्तव में तो सर्व व्यापी अस्तित्व, जो मुझ में और पूरे जगत में व्याप्त है और जो आदि से अन्त तक है, समस्त कार्य उसी के हैं और वही सब कुछ करता है। वह यदि पूर्ण है तो मैं भी पूर्ण हूं, फिर कोशिश किस चीज़ के लिए? और वह अगर अपनी पूर्णता के लिए प्रयत्नशील है तो जिस सर्व व्यापक गति के साथ वह पूर्णता की ओर अग्रसर हो रहा है, उसी की लपेट में एक अंश के रूप में मैं भी खुद ब खुद चला जाऊंगा। मैं एक अंश हूं, मैं क्या जानूं कि सर्वव्यापी किधर जा रहा है और किधर जाना चाहता है।

इस मत के व्यावहारिक परिणाम लगभग वही हैं जो हमने अभी सन्यासी दृष्टिकोण के संबंध में बताए हैं, बल्कि कुछ हालतों में इस विचारधारा को मानने वाले आदमी का व्यवहार उन लोगों के व्यवहार से मिलता-जुलता होता है जो पूर्णतया अज्ञानपूर्ण मार्ग की पैरवी करते हैं, क्योंकि यह अपना परिचालन सूत्र अपनी इच्छाओं के हाथ में दे देता है और फिर जिधर इच्छाएं ले जाती हैं, उस ओर यह समझते हुये निस्संकोच रूप में चला जाता है कि जाने वाला अस्तित्व सर्वव्यापी है, मैं नहीं।

पहले दृष्टिकोण की तरह ये तीनों दृष्टिकोण भी अज्ञानमूलक हैं और इस आधार पर व्यवहार के जिन प्रकारों का जन्म इन से होता है, वे भी अज्ञानपूर्ण हैं। इसलिए कि पहले तो उन में से कोई दृष्टिकोण भी किसी ज्ञानात्मक प्रमाण पर आधारित नहीं है, बल्कि केवल अनुमान और कल्पना के आधार पर विभिन्न रायें कायम कर ली गई हैं, दूसरे इनका सत्य के विरुद्ध होना अनुभव से सिद्ध होता है। यदि इन में से कोई विचार भी सत्य के अनुरूप होता, तो उसे व्यवहार में लाने से बुरे परिणाम सामने न आते। जब आप देखते हैं कि एक चीज़ को जहां-कहीं इन्सान ने खाया और उसके पेट में दर्द

ज़रूर हुआ, तो इस अनुभव से आप इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि वास्तव में आमाशय की संरचना और उस के मिज़ाज के अनुकूल यह चीज़ नहीं है। बिल्कुल इसी तरह जब तथ्य यह है कि अनेकेश्वरवाद, सन्यास और अद्वैतवाद की धारणाओं को अपनाने से इंसान को सामूहिक रूप में हानि ही पहुंची है, तो वह इस बात का सबूत है कि इनमें से कोई धारणा भी सत्यता से सम्पर्क नहीं रखती है।

इस्लाम

अब तीसरी सूरत को लेना चाहिए, जो जीवन की इन मौलिक समस्याओं के बारे में राय कायम करने की आख़िरी सूरत है और वह यह है कि पैग़म्बरों ने इन समस्याओं का जो हल पेश किया है, उसे स्वीकार किया जाए।

इस 'तरीके' की मिसाल ऐसी है जैसे आप किसी अन्जान जगह पर हों और आपको खुद उस जगह के बारे में कोई जानकारी न हो, तो आप किसी दूसरे आदमी से पूछें और उसकी रहनुमाई में वहां की सैर करें। जब इस तरह का मौका आता है, तब आप पहले उस आदमी को ढूंढते हैं जो खुद जानकार होने का दावा करे फिर आप अन्दाज़े से इसका इत्मीनान हासिल करने की कोशिश करते हैं कि वह आदमी भरोसे के लायक है या नहीं, फिर आप उसकी रहनुमाई में चलकर देखते हैं और जब अनुभव से यह साबित हो जाता है कि उसकी दी हुई जानकारी के अनुसार आपने जो अमल किया, उससे कोई बुरा नतीजा नहीं निकला, तो आपको पूरे तौर पर यकीन हो जाता है कि वास्तव में वह व्यक्ति जानकार था और उस जगह के बारे में उसने जो कुछ बताया था, ठीक था। यह एक वैज्ञानिक तरीका है। यदि कोई और वैज्ञानिक तरीका सम्भव न हो तो फिर राय कायम करने के लिए यही एक तरीका सही हो सकता है।

अब देखिए, यह दुनिया आपके लिए एक अजनबी जगह है। आपको नहीं मालूम कि इसकी हकीकत क्या है, इसमें प्रबन्ध किस

प्रकार का है, किस क़ानून के अनुसार यह कारख़ाना चल रहा है, इसमें आपकी क्या हैसियत है और यहां आपके लिए किस नीति का अपनाना उचित है। आपने पहले यह राय क़ायम की कि जैसा कुछ आंखों से दिखाई देता है, वास्तविक तथ्य भी वही है। आपने इस राय के अनुसार अमल किया, मगर नतीजा ठीक नहीं निकला। फिर आपने अनुमान इत्यादि के आधार पर विभिन्न रायें क़ायम कीं और प्रत्येक के अनुसार अमल करके देखा, परन्तु हर सूरत में नतीजा ग़लत ही निकला। इसके बाद आपके लिए आख़िरी उपाय यही है कि आप ईश्वर के पैग़म्बरों की ओर रुजू करें। ये लोग जानकार होने का दावा करते हैं। इनके बारे में जितनी छान-बीन की जा सकती है, उससे यह मालूम होता है कि ये अत्यन्त सच्चे, अमानतदार बहुत ही नेक, निःस्वार्थी और सही अक्ल रखने वाले लोग हैं, अतः इन पर भरोसा करने के लिए प्रत्यक्षतः पर्याप्त कारण मौजूद हैं। अब केवल यह देखना बाक़ी रह जाता है कि संसार और संसार में आपकी हैसियत के बारे में जो कुछ वे बताते हैं, वह कहां तक दिल को लगती हुई है, उनके विरुद्ध कोई वैज्ञानिक सबूत तो नहीं है और उनके अनुसार जो नीति संसार में अपनायी गयी है, वह तजुर्बे से कैसी साबित हुई। अगर छान-बीन के बाद इन तीनों बातों का जवाब भी सन्तोषजनक निकले, तो उनके नेतृत्व पर भरोसा करना चाहिए और जीवन में उसी मार्ग को अपनाना चाहिए जो इस दृष्टिकोण के अनुकूल हो।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि अज्ञानपूर्ण तरीक़ों के मुक़ाबले में यह तरीक़ा वैज्ञानिक तरीक़ा है और यदि इस ज्ञान के आगे इन्सान नत-मस्तक हो जाये और अकड़ और अहंकार त्याग कर इस ज्ञान का अनुसरण करे और अपनी नीति में उन्हीं मर्यादाओं का आदर करे जो इस ज्ञान ने निर्धारित की हैं तो इसी तरीक़े का नाम 'इस्लामी तरीक़ा' है।

दुनिया और इन्सान के बारे में ईश्वर के पैग़म्बरों का दृष्टिकोण

ईश्वरीय पैग़म्बरों का कहना है कि यह सारा जगत जो इन्सान के चारों ओर फैला हुआ है और जिसका एक हिस्सा इन्सान भी है कोई इत्तिफ़ाक़ी या आकस्मिक घटना नहीं है, बल्कि एक अनुशासन पूर्ण और व्यवस्थित राज्य है। ईश्वर ने इसको बनाया है, वही इसका मालिक और अकेला शासक है। यह एक सर्व सत्तात्मक व्यवस्था है, जिसमें सारे अधिकार केन्द्रीय सत्ता के हाथ में हैं। इस सर्वोच्च शासक के अलावा यहां किसी का हुक्म नहीं चलता। तमाम ताक़तें जो जगत की व्यवस्था में काम कर रही हैं, उसी के अधीन हैं और किसी की मजाल नहीं कि उसके हुक्म को टाल सके या उसकी इजाज़त के बिना अपने इख़्तियार से कोई हरकत करे। इस व्यापक सिस्टम में न तो कोई मुख़्तार हो सकता है और न ग़ैर ज़िम्मेदार और यही स्वाभाविक भी है।

इन्सान यहां पैदाइशी तौर पर प्रजा और आधीन है। प्रजा होना उसकी मर्ज़ी पर निर्भर नहीं है, बल्कि वह प्रजा ही पैदा हुआ है और प्रजा के सिवा कुछ और होना उसके लिए मुम्किन ही नहीं, अतः इसे खुद अपने लिए ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा बनाने और अपनी ड्यूटी आप चुन लेने का कोई अधिकार नहीं।

वह किसी चीज़ का मालिक नहीं है कि अपनी सम्पत्ति में ख़र्च करने के नियम खुद बनाये। इसका शरीर और इसकी सारी शक्तियां ईश्वर की सम्पत्ति और देन है। अतः वह खुद उनका इस्तेमाल अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ करने का हक़दार नहीं है, बल्कि जिसने ये चीज़े इसे प्रदान की हैं, उसी की मर्ज़ी के मुताबिक़ इसे इन चीज़ों को इस्तेमाल करना चाहिए।

इसी तरह जो चीज़ें इसके चारों ओर दुनिया में पाई जाती हैं, ज़मीन जानवर, पानी, पेड़-पौधे, खनिज पदार्थ आदि ये सब ईश्वर की सम्पत्ति हैं। इन्सान इनका मालिक नहीं है, अतः इन्सान को इन को भी अपनी मर्ज़ी के मुताबिक काम में लाने का कोई हक नहीं है, बल्कि उसे इन चीज़ों के साथ उस क़ानून के मुताबिक़ व्यवहार करना चाहिए जो असल मालिक ने उनके लिए बनाया है।

इसी तरह तमाम इन्सान भी, ज़ो धरती पर बसते हैं और जिनकी ज़िन्दगी एक दूसरे से जुड़ी हैं, ईश्वर की प्रजा हैं। अतः उन्हें अपने आपसी सम्बन्धों के बारे में खुद उसूल और ज़ाब्ते तय करने का अधिकार नहीं है, उनके सारे ही संबंध ईश्वर के बनाये हुये क़ानून पर कायम होने चाहिएं।

रहा यह सवाल कि ईश्वरीय क़ानून क्या है तो पैग़म्बर कहते हैं कि ज्ञान के जिस माध्यम के आधार पर हम तुम्हें तुम्हारी और दुनिया की यह वास्तविकता बता रहे हैं, ज्ञान के उसी माध्यम से हमें ईश्वरीय कानून भी मालूम हुआ है। ईश्वर ने खुद वह ज्ञान हमें दिया है और हमें इस काम पर लगा दिया है कि यह ज्ञान हम तुम तक पहुंचा दें, अतः तुम हम पर भरोसा करो, हमें अपने बादशाह का नुमाइन्दा मान लो और हमसे उसका प्रमाणिक क़ानून लो।

फिर पैग़म्बर हमसे कहते हैं कि जो तुम ज़ाहिरी तौर पर देखते हो कि जगत की सलतनत का सारा कारोबार एक अनुशासन के साथ चल रहा है, लेकिन न तो खुद बादशाह नज़र आता है, न उसके कार्यकर्त्ता दिखाई देते हैं और यह जो तुम एक तरह की स्वतन्त्रता अपने अन्दर महसूस करते हो कि जैसे चाहो काम करो, मालिकाना रवय्या भी अपना सकते हो और असल मालिक के सिवा दूसरों के आगे भी बन्दगी और आज्ञापालन में सिर झुका सकते हो, हर हालत में तुम्हें रोज़ी मिलती है, काम करने के साधन उपलब्ध

हो जाते हैं और नाफ़रमानी तथा बग़ावत की सज़ा फ़ौरन ही नहीं दी जाती, यह सब वास्तव में तुम्हारी परीक्षा और आज़माइश के लिए है। क्योंकि तुम्हें अक़्ल दी गई है और किसी चीज़ से कोई नतीजा निकालने की ताक़त तुम्हें प्रदान की गई है, इसलिए मालिक ने अपने आप को और आपने राज्य की व्यवस्था को तुम्हारी नज़रों से ओझल कर दिया है। वह तुम्हें आज़माना चाहता है कि तुम अपनी शक्तियों और सलाहियतों से किस तरह काम लेते हो। उसने तुमको समझ-बूझ, चुनाव की आज़ादी (Freedom of Choice) और एक प्रकार की खुद मुख़्तारी देकर छोड़ दिया है। अब अगर तुम अपनी प्रजा होने की हैसियत को समझो और अपनी खुशी और शौक से इस हैसियत को क़ुबूल करो, बिना इसके कि तुम पर इस हैसियत में रहने के लिए कोई दबाव या ज़बरदस्ती हो तो तुम अपने मालिक के द्वारा ली गयी आज़माइश में कामियाब होगे और अगर प्रजा होने की हैसियत को न समझो, या समझने के बावजूद विद्रोह की नीति अपनाओ तो इम्तिहान में असफल हो जाओगे। इसी इम्तिहान के मक़सद से तुम्हें दुनिया में कुछ अधिकार दिये गये हैं। दुनिया में बहुत सी चीज़ें तुम्हारे क़ब्जे में दे दी गयी हैं और तुम्हें उम्र भर की मोहलत दी गयी है।

इसके बाद पैग़म्बर हमें बताते हैं कि यह दुनिया की ज़िन्दगी, क्योंकि इम्हितान के लिए दी गयी मोहलत है, इसलिए न यहां हिसाब होता है और न सज़ा या इनाम दिया जाता है।[1] यहां इन्सान

---

१. इस सिलसिले में यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि इस समय हम जिस संसार में हैं, वह भौतिक संसार है, नैतिक नहीं। जिन क़ानूनों के मुताबिक जगत की मौजूदा व्यवस्था चल रही है, वे क़ानून नैतिक नहीं भौतिक हैं। इसलिए मौजूदा संसार में कर्मों के नैतिक परिणाम पूरी तरह सामने नहीं आ सकते। वे अगर सामने आ सकते हैं तो केवल

(बाक़ी अगले पेज पर)

को जो कुछ दिया जाता है, ज़रूरी नहीं कि वह किसी भले काम का इनाम ही हो। वह इस बात की पहचान नहीं है कि ईश्वर तुम से ख़ुश है या जो कुछ तुम कर रहे हो, वह सही है। बल्कि दरअस्ल यह सब कुछ इम्तिहान के लिए दिया गया सामान है। धन-दौलत, औलाद, नौकर-चाकर, हुकूमत, ज़िन्दगी गुज़ारने का सामान ये सब वे चीज़ें हैं, जो तुम्हें इम्तिहान के लिए दी जाती हैं, जिससे कि तुम उन पर काम करके दिखाओ और अपनी अच्छी या बुरी योग्यताओं और क़ाबिलियतों का प्रदर्शन करो। इसी तरह जो दुःख, नुक़सान और मुसीबतें वग़ैरह आती हैं वे भी लाज़िमी तौर पर किसी बुरे काम की सज़ा नहीं है, बल्कि इनमें से कुछ प्राकृतिक नियमों के तहत आप

(पिछले पेज के फुट नोट का बाक़ी)

उसी हद तक जिस हद तक भौतिक नियम उन्हें सामने आने का मौक़ा दें, वरना भौतिक नियम जहां नैतिक परिणामों के ज़ाहिर होने के लिये अनुकूल न हों, वहां उनका ज़ाहिर होना नामुम्किन है। मिसाल के तौर पर देखिए कि अगर कोई आदमी किसी को क़त्ल कर दे तो इस काम का नैतिक परिणाम उसी वक़्त सामने आ सकता है जब कि भौतिक नियम उसका पता चलाने, अपराधी का अपराध सिद्ध होने और उस पर नैतिक दण्ड के लागू होने में मददगार हों। अगर मददगार न हों तो कोई नैतिक परिणाम सिरे से सामने आयेगा ही नहीं और अगर वे मददगार बन भी जायें तब भी इस काम के नैतिक परिणाम पूरे तौर पर ज़ाहिर न हो सकेंगे। क्योंकि क़ातिल को उसे क़त्ल करने की वजह से मौत के घाट उतार देने से भी क़त्ल के पूरे-पूरे नैतिक परिणाम क़ातिल के सामने नहीं आते हैं, इसलिए यही माननां पड़ता है कि यह संसार बदला पाने की जगह न तो है, न हो सकती है। नैतिक परिणाम पूरे तौर से सामने आने के लिए और पूरा पूरा बदला मिलने के लिए एक ऐसी जगत व्यवस्था की ज़रूरत है, जिसमें मौजूदा जगत व्यवस्था के विपरीत नैतिक क़ानून लागू हों और भौतिक क़ानून की हैसियत केवल उनके सहायक की हो।

से आप ज़ाहिर होने वाले नतीजे हैं,[1] कुछ आज़माइश के अन्तर्गत आते हैं[2] और कुछ का सामना इस लिए करना पड़ता है कि हकीक़त के ख़िलाफ़ राय कायम करके, जब तुम एक नीति अपानते हो तो लाज़मी तौर पर तुम्हें चोट लगती है।[3] बहर हाल यह दुनिया बदले की जगह नहीं है, बल्कि इम्तिहान की जगह है। यहां जो कुछ नतीजे सामने आने होते हैं वे किसी तरीके या काम के सही या ग़लत, भले या बुरे, छोड़ देने या अपना लेने की कसौटी नहीं बन सकते। असल कसौटी तो आख़िर में ज़ाहिर होने वाले नतीजे होंगे। मोहलत की ज़िन्दगी ख़त्म होने के बाद एक दूसरी ज़िन्दगी है, जिसमें तुम्हारे पूरे

---

१. जैसे ज़िना (व्यभिचार) करने वाले का किसी बीमारी में घिर जाना, उसके पाप की नैतिक सज़ा नहीं है, बल्कि उसका भौतिक परिणाम है। अगर वह इलाज करने मे कामियाब हो जाये तो बीमारी से बच जायेगा, लेकिन नैतिक सज़ा से न बचेगा। अगर अपनी ग़लती पर तौबा और पश्चाताप करे तो नैतिक सज़ा से तो बच जायेगा, लेकिन बीमारी दूर न होगी।

२. मिसाल के तौर पर आदमी का निर्धन और ग़रीब होना उसके लिए आज़माइश है, जिसमें यह देखा जाता है कि वह अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए नाजायज़ और हराम तरीके इस्तेमाल करता है या जायज़ और हलाल तरीके ही इस्तेमाल करता है। मुसीबतों में 'सत्य' पर जमा रहता है या बेचैन और बेक़रार होकर 'असत्य' के सामने सिर झुका देता है।

३. यानी इन्सान इस दुनिया को बेख़ुदा और अपने आप को ख़ुदमुख़्तार समझ कर काम करता है, तो क्योंकि न दुनिया बेख़ुदा है और न इन्सान ख़ुदमुख़्तार इसलिए हकीकत के ख़िलाफ़ काम करने से वह ज़रूर चोट खाता है। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे आग को खिलौना समझ कर आप हाथ में पकड़ लें, तो हाथ जल जायेगा, क्योंकि आप ने हकीकत के ख़िलाफ़ रवय्या अपनाया।

कारनामे को जांच कर फ़ैसला किया जाएगा कि तुम आज़माइश में कामियाब हुये या नाकाम। और वहां जिस वजह से कामियाबी या नाकामी हासिल होगी वह यह है कि नम्बर एक तुमने अपनी सोचने-समझने की ताक़त और तर्क शक्ति के सही इस्तेमाल से ईश्वर के वास्तविक शासक और स्वामी होने और उसकी ओर से आयी हुयी शिक्षा और आदेश के ईश्वरीय होने को पहचाना या नहीं। दूसरे नम्बर पर यह कि इस सच्चाई को जानने के बाद इख़्तियार की आज़ादी रखने के बावजूद तुम ने अपनी मर्ज़ी और शौक़ से ईश्वर की प्रभुता और उसके आदेशों (शरअी हुक्म) के सामने सिर झुकाया या नहीं।

इस्लामी दृष्टिकोण की समालोचना

दुनिया और आख़िरत के बारे में वह दृष्टिकोण जो पैग़म्बरों ने पेश किया है, एक मुकम्मल दृष्टिकोण है। इसके तमाम अंशों में परस्पर एक तर्क-संगत संबंध है। कोई अंश किसी दूसरे अंश से टकराता नहीं। इससे जगत की तमाम चीज़ों और घटनाओं का पूरा कारण मालूम हो जाता है। कोई एक चीज़ भी ऐसी नहीं दीख पड़ती, जिसकी विवेचना इस दृष्टिकोण से न की जा सकती हो। अतः यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण' की जो भी परिभाषा की जाये, वह इस पर पूरी उतरती है।

कोई निरीक्षण आज तक ऐसा सामने नहीं आया जिससे इस दृष्टिकोण का खण्डन होता हो, अतः वह अपनी जगह पर अटल है, टूटे हुये और खण्डित सिद्धान्तों में इसकी गिनती नहीं की जा

सकती।[1]

जगत की व्यवस्था का जो अवलोकन हम करते हैं, उससे यह सिद्धान्त सबसे ज़्यादा सत्य (Most Probable) प्रतीत होता है। जगत में जो ज़बरदस्त अनुशासन पाया जाता है, उसे देखकर यह कहना ज़्यादा अक़्लमंदी की बात है कि इसका कोई व्यवस्थापक है, इसके मुक़ाबले में कि इस जगत का कोई व्यवस्थापक नहीं है। इसी तरह इस व्यवस्था को देखकर यह नतीजा निकालना कि यह एक केन्द्रीय व्यवस्था है और एक ही सर्वाधिकारी इसका व्यवस्थापक है, इसकी अपेक्षा अधिक बुद्धि-संगत है कि यह विकेन्द्रीय शासन व्यवस्था है और अनेक प्रबन्धकों के अधीन चल रही है। इसी तरह जो हुकूमत की शान इस जगत व्यवस्था में खुले तौर पर दिखाई देती है उसे देखकर यह राय क़ायम करना कि यह एक हिकमत से भरी और उद्देश्यपूर्ण व्यवस्था है, इससे ज़्यादा अक़्ल में आने वाली बात है कि इसे बच्चों का एक खेल समझा जाये।

जब हम इस हैसियत से विचार करते हैं कि वास्तव में अगर यह जगत व्यवस्था एक राज्य है और इंसान इस व्यवस्था का एक हिस्सा है, तो यह बात हमें बिल्कुल उचित मालूम होती है कि इस व्यवस्था में इंसान की खुद मुख़्तारी और ग़ैर-ज़िम्मेदारी के लिए कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए और उसकी सही हैसियत प्रजा की

---

१. किसी ज़माने के वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का इसके ख़िलाफ़ होना इस बात का सबूत नहीं कि यह सिद्धांत ग़लत हो गया। एक वैज्ञानिक सिद्धांत को सिर्फ़ तथ्य (Facts) ही तोड़ सकते हैं,न कि दृष्टिकोण। इसलिए जब तक यह न बताया जाये कि पैग़म्बरों के पेश किए हुये मनुष्य संबंधी या संसार संबंधी इस सिद्धांत को किस साबित शुदा तथ्य ने ग़लत साबित कर दिया है, इसको खंडित दृष्टिकोणों में शामिल करना, बिल्कुल ही एक अवैज्ञानिक और पक्षपात पूर्ण 'दावा' है।

ही होनी चाहिए। इस लिहाज़ से यह हमको बहुत ही उचित और तर्क-युक्त दृष्टिकोण मालूम होता है।

जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम देखते हैं तो यह बिल्कुल एक व्यवहारिक दृष्टिकोण है। ज़िन्दगी की एक पूरी स्कीम अपनी पूरी तफसील के साथ इस दृष्टिकोण के आधार पर बनती है। दर्शन और नैतिकता, विद्या, साहित्य, कला, राजनीति, शासन-प्रबन्ध, युद्ध, सन्धि, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, तात्पर्य यह है कि ज़िन्दगी के हर पहलू, पक्ष और ज़रूरत के लिये यह एक स्थायी आधार जुटाता है और ज़िन्दगी के किसी भाग में भी इन्सान को अपनी नीति निश्चित करने के लिए इस सिद्धान्त से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अब हमें यह देखना बाक़ी रह गया है कि इस दृष्टिकोण से दुनिया की ज़िन्दगी में किस तरह की नीति का निर्माण होता है। और उसके परिणाम क्या हैं।

व्यक्तिगत जीवन में यह दृष्टिकोण अन्य अज्ञानपूर्ण दृष्टिकोण के विपरीत एक अत्यन्त उत्तरदायित्व पूर्ण और अनुशासित नीति को जन्म देता है। इस दृष्टिकोण को मान लेने के मायने यह हैं कि इंसान अपने शरीर और उसकी शक्तियों का और दुनिया तथा उसकी किसी चीज़ का इस्तेमाल कभी अपनी सम्पत्ति समझ कर ख़ुद मुख़्तारी के साथ न करे। बल्कि हर चीज़ का इस्तेमाल ईश्वरीय सम्पत्ति समझ कर ईश्वर के क़ानून की पाबन्दी के साथ करे। हर चीज़ को जो उसे हासिल है, ईश्वर की अमानत समझे, यह समझते हुये उसका इस्तेमाल करे कि मुझे इस अमानत का पूरा हिसाब देना है और हिसाब भी उसे देना है, जिसकी निगाह से मेरा कोई काम और दिल का कोई इरादा तक छिपा नहीं है। ज़ाहिर है कि ऐसा आदमी हर हालत में एक ज़ाब्ते का पाबन्द होगा। वह इच्छाओं का बन्दा होकर कभी बे-लगाम नहीं बन सकता, वह अत्याचारी और

विश्वासघाती नहीं हो सकता, उसके चरित्र पर पूर्ण विश्वास किया जा सकता है, उसे नियमों के पालन करने के लिए किसी बाहरी दबाव की ज़रूरत नहीं होती, उसके अपने मन में एक ज़बरदस्त नैतिक अनुशासन पैदा हो जाता है, जो उसे उन अवसरों पर भी इंसाफ़ और हक़ पर जमाये रखता है, जहां उसे किसी दुनियावी ताकत की पूछ-ताछ की आशंका नहीं होती। ईश्वर का डर और उसकी अमानत का एहसास वह चीज़ है, जिससे बढ़कर समाज को विश्वसनीय व्यक्तियों के निर्माण का कोई दूसरा साधन कल्पना से बाहर है।

इसके साथ ही यह दृष्टिकोण आदमी को सिर्फ़ प्रयत्नशील ही नहीं बनाता, बल्कि उसकी कोशिशों को स्वार्थपरता, इच्छा-लोलुपता या राष्ट्रवाद के बदले सत्यनिष्ठा और बुलन्द नैतिक उद्देश्यों की राह पर लगा देता है। जिस आदमी की अमने बारे में यह राय हो कि मैं दुनिया में बेकार नहीं आया हूँ, बल्कि ईश्वर ने मुझे काम करने के लिए यहां भेजा है और मेरी ज़िन्दगी अपने लिए या अपने दूसरे, सम्बन्धियों के लिए नहीं है,बल्कि उस काम के लिए है जिससे ईश्वर प्रसन्न हो, मैं यों ही नहीं छोड़ दिया जाऊंगा,बल्कि मुझ से पूरा हिसाब लिया जायेगा कि मैंने अपने वक़्त का और अपनी ताक़तों का कितना और किस तरह इस्तेमाल किया, ऐसे आदमी के मुकाबले में ज़्यादा कोशिश करने वाला और सार्थक और परिणामजनक और सही कोशिश करने वाला इन्सान और कोई नही हो सकता। अतः यह दृष्टिकोण ऐसे बेहतरीन इंसान पैदा करता है कि उनसे बेहतर व्यक्तिगत व्यवहार वाले आदमियों की कल्पना करना मुश्किल है।

अब सामाजिक पहलू से देखिए

सबसे पहले तो यह दृष्टिकोण इन्सानी समाज की बुनियाद को ही बदल देता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सारे इंसान ईश्वर की

सबका मक़ाम बराबर और सबके ही लिए अवसर भी समान हैं। कोई व्यक्ति, ख़ानदान, वर्ग, जाति और नस्ल न तो दूसरे लोगों से उच्च और श्रेष्ठ है और न उसे कोई विशिष्ट अधिकार हासिल हैं। इस तरह इन्सान पर इन्सान के शासन और बड़ाई की जड़ कट जाती है और वे तमाम ख़राबियाँ एक साथ दूर हो जाती हैं, जो बादशाहत, साम्राज्यवाद, जागीरदारी, नवाबी, ब्राह्मणवाद और पोपवाद से पैदा होती हैं।

फिर इससे उन क़बाइली, नस्ली भौगोलिक और वर्ण (रंग) सम्बन्धी पक्षपातों का भी अन्त हो जाता है, जिनके कारण दुनिया में सबसे ज़्यादा रक्त पात और ख़ून-ख़राबे हुये हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार सारी धरती ईश्वर की है और सारे इन्सान 'आदम' की औलाद और ईश्वर के बन्दे हैं और श्रेष्ठता और बड़ाई की बुनियाद, वंश-जाति, माल-दौलत और रंग की सफेदी या लाली पर नहीं, बल्कि चरित्र की अच्छाई और ईश्वरीय भय पर है। जो सबसे ज़्यादा ईश्वर से डरने वाला और नेकी और भलाई पर चलने वाला है, वही सबसे श्रेष्ठ है।

इसी तरह इन्सान और इन्सान के बीच सामाजिक सम्बन्ध या अन्तर का आधार भी इस दृष्टिकोण ने पूरे तौर पर बदल दिया है। इन्सान ने अपनी कोशिश और खोज के अनुसार जिन चीज़ों को जुड़ने या कटने का आधार ठहराया है, वे इन्सानियत को बेशुमार हिस्सों में विभाजित कर देती हैं और उन हिस्सों के बीच बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी कर देती हैं जिनको पार करना असम्भव है, क्योंकि रंग, नस्ल, जाति, वतन या राष्ट्र वे चीज़ें नहीं हैं, जिन्हें इन्सान बदल सकता हो और एक गिरोह से दूसरे गिरोह में जा सकता हो। इसके विपरीत यह दृष्टिकोण इन्सान और इन्सान में जुड़ने और कटने का आधार ईश्वर की बन्दगी और ईश्वरीय क़ानून की पैरवी को

मानता है। जो लोग सृष्टि की बन्दगी छोड़ कर स्रष्टा की उपासना और बन्दगी इख़्तियार कर लें और ईश्वरीय क़ानून को अपनी ज़िन्दगी का एक मात्र क़ानून मानें, वे सब एक जमाअत या गिरोह हैं और जो ऐसा न करें, वे दूसरा गिरोह हैं। इस तरह से तमाम भेद मिटकर सिर्फ एक भेद बाकी रह जाता है और वह भेद भी ऐसा है जो दूर किया जा सकता है, क्योंकि एक आदमी के लिये यह हर वक़्त मुम्किन है कि अपना अक़ीदा और ज़िन्दगी का ढंग बदल दे और एक गिरोह से दूसरे गिरोह में चला जाये।

इन तमाम सुधारों के बाद इस दृष्टिकोण के अनुसार जिस समाज का निर्माण होता है, उसकी मनोवृत्ति, स्प्रिट और सामाजिक ढांचा बिल्कुल बदला हुआ होता है। इसमें राज्य इंसान की हाकमियत पर नहीं, बल्कि ईश्वर की हाकमियत और प्रभुता के आधार पर बनता है।[1] हुकूमत ईश्वर की होती है, क़ानून भी ईश्वर का होता है। इन्सान सिर्फ ईश्वर के 'नुमाइन्दों' की हैसियत से काम करता है। यह चीज़ सबसे पहले तो उन ख़राबियों को दूर कर देती है, जो इन्सान पर इन्सान की हुकूमत और इन्सान के क़ानून बनाने से पैदा होती है।

फिर जो एक बहुत बड़ा फ़र्क़ इस दृष्टिकोण के अनुसार राज्य बनने में पैदा हो जाता है, वह यह है कि राज्य की पूरी व्यवस्था में उपासना और ईश-भय की स्प्रिट फैल जाती है। राजा और प्रजा दोनों यह समझते हैं कि हम ईश्वर के राज्य में हैं और हमारा मामला सीधे उस ईश्वर से है जो छिपे और खुले सबको जानता है। 'टैक्स' देने वाला यह समझकर 'टैक्स' देता है कि वह ईश्वर को 'टैक्स' दे रहा है और 'टैक्स' लेने वाले और उस को ख़र्च करने वाले यह

---

१. विवरण के लिए देखिए–'इस्लाम का राजनीतिक दृष्टिकोण'
प्रकाशक–मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी- दिल्ली-६

समझते हुये काम करते हैं कि यह माल ईश्वर का माल है और हम अमीन और निगरां (Trustee) की हैसियत से काम कर रहे हैं। एक सिपाही से लेकर एक जज और गर्वनर तक हुकूमत का हर कर्मचारी अपनी ड्यूटी इसी मनोवृत्ति के साथ पूरी करता है, जिस मनोवृत्ति और भाव के साथ वह 'नमाज़' पढ़ता है। दोनों ही काम उसके लिए इबादत हैं और दोनों में एक वही ईश-भक्ति और ईश-भय की भावना ज़रूरी है। जनता अपने में से जिन लोगों का ईश्वरीय प्रतिनिधि के लिए चुनाव करती है, उनमें सबसे पहले जो ख़ूबी देखी जाती है। वह ईश्वर का भय और अमानतदारी और सच्चाई की ख़ूबी है। इस तरह से वे लोग उभर कर ऊपर आते हैं और सत्ता उनके हाथों में दी जाती है,जिनका चरित्र और आचरण समाज में सबसे अच्छा होता है।

सभ्यता और सामाजिकता में भी यही दृष्टिकोण उसी ईश-भय और पवित्राचरण की भावना फैला देता है। उसमें स्वार्थपरता के बजाय ईश-भक्ति होती है, एक इन्सान और दूसरे इन्सान के बीच ईश्वर का वास्ता पाया जाता है और ईश्वरीय कानून दोनों के ताल्लुकात को नियमबद्ध करता है। यह क़ानून क्योंकि उस ईश्वर ने बनाया है, जो तमाम इच्छाओं और स्वार्थ की भावना से मुक्त है, जो हर चीज़ का जानने वाला है और उसका कोई काम बेमक़सद नहीं होता, इसलिए इस क़ानून में फ़ितने का हर दरवाज़ा और ज़ुल्म का हर रास्ता बन्द कर दिया गया है और इन्सानी फ़ितरत के हर पहलू और उसकी ज़रूरत का ध्यान रखा गया है।

यहां इतना मौक़ा नहीं कि हम इस पूरी सामूहिक व्यवस्था का नक़्शा पेश करें, जो इस दृष्टिकोण के आधार पर बनती है, लेकिन जो कुछ हमने बयान किया है, उससे आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि पैग़म्बरों ने इन्सान और जगत् के बारे में जो दृष्टिकोण पेश किया

है, वह किस तरह की नीति और व्यवहार को जन्म देता है। और उसके परिणाम क्या हैं और क्या हो सकते हैं। यह बात भी नहीं है कि काग़ज़ पर केवल एक काल्पनिक नक्शा (Utopia) हो, बल्कि इतिहास में इस दृष्टिकोण के आधार पर एक सामूहिक व्यवस्था और राज्य का निर्माण करके दिखाया जा चुका है और इतिहास साक्षी है कि इस दृष्टिकोण के आधार पर जिस तरह के लोग तैयार हुये थे, उनसे बेहतर लोग न धरती पर पाये गये और न उस राज्य से बढ़कर कोई राज्य इंसान के लिये हितकारी सिद्ध हुआ। उस राज्य के लोगों में अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी का एहसास इतना बढ़ गया था कि मरुस्थल की एक औरत व्यभिचार के फलस्वरूप गर्भवती हो जाती है और वह जानती है कि मेरे इस जुर्म की सज़ा बड़ी भयानक सज़ा है, तब भी वह खुद चलकर आती है और दरख़्वास्त करती है कि उसे सज़ा दी जाये, उससे कहा जाता है कि प्रसव के बाद आओ और बग़ैर किसी ज़मानत के उसे छोड़ दिया जाता है। बच्चा पैदा होने के बाद वह फिर मरुस्थल से आती है और सज़ा दी जाने की दरख़्वास्त करती है। उससे कहा जाता है कि बच्चे को दूध पिला और जब दूध पिलाने की मुद्दत ख़त्म हो जाये तब आना। वह फिर लौट जाती है और कोई पुलिस की देख-रेख उस पर नहीं की जाती। दूध पिलाने की मुद्दत ख़त्म होने पर वह फिर आकर कहती है कि अब मुझे सज़ा देकर उस पाप से मुक्त कर दिया जाये, जो मुझसे हो चुका है, अतः उसे सज़ा दे दी जाती है और जब वह मर जाती है तो उसके लिए रहमत की दुआ की जाती है। जब एक आदमी के मुंह से उसके बारे में संयोगवश वह बात निकल जाती है कि "कैसी बेशर्म औरत थी" तो जवाब में कहा जाता है— "अल्लाह की क़सम उसने ऐसी तौबा की थी कि अगर नाजायज़ 'टैक्स' लेने वाला भी ऐसी तौबा करता तो उसे बख़्शा दिया जाता।"

यह तो उस समाज के लोगों का हाल था और उस राज्य का हाल यह था कि जिसकी हुकूमत की आमदनी करोड़ों रुपए थी और जिसके ख़ज़ाने ईरान, शाम तथा मिस्र की दौलत से भरे पड़े थे उसका सदर (अध्यक्ष) केवल डेढ़ सौ रुपया मासिक वेतन लेता था, तथा उसके नागरिकों में ढूंढने से मुश्किल से ही कोई ऐसा व्यक्ति मिलता था जो दान लेने का अधिकारी हो।

इस तजुर्बे के बाद भी अगर किसी व्यक्ति को यह संतोष प्राप्त न हो कि पैग़म्बरों ने सृष्टि की व्यवस्था की हक़ीक़त और उसमें इन्सान की हैसियत के संबंध में जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है वह हक है,तो ऐसे व्यक्ति के संतोष के लिए कोई दूसरी सूरत सम्भव नहीं है। क्योंकि अल्लाह और फ़रिश्तों तथा आख़िरत के जीवन का सीधे निरीक्षण तो उसे प्राप्त हो नहीं सकता। और जहां निरीक्षण सम्भव न हो वहां तजुर्बे से बढ़ कर सेहत का कोई दूसरा मेयार नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर अगर एक डाक्टर मरीज़ के अन्दर निरीक्षण करके नहीं देख सकता कि अभी उसके सिस्टम में क्या ख़राबी पैदा हो गयी है तो विभिन्न दवाएं देकर देखता है और जो दवा अन्धेरी कोठरी में ठीक निशाने पर जा कर बैठती है, उसका बीमारी का दूर कर देना ही इस बात का सबूत होता है कि सिस्टम में जो ख़राबी थी,यह दवा उसके लिए उपयुक्त थी। इसी प्रकार जब इन्सानी जीवन का कल किसी दूसरे दृष्टिकोण से ठीक नहीं होता तथा केवल पैग़म्बरों के दृष्टिकोण ही से ठीक होता है तो यह भी इस बात का सबूत है कि यह दृष्टिकोण हकीकत के अनुसार है। यह सम्पूर्ण सृष्टि अल्लाह की सल्तनत है और वास्तव में इस जीवन के बाद एक और जीवन है, जिसमें इन्सान को अपने सारे कर्मों का हिसाब देना है। -